THE TIMES OF INDIA

Date: 21-12-17

Trump's worldview

New American national security strategy should benefit India, but there are ifs

TOI Editorials

Providing greater clarity on the current US administration's worldview, President Donald Trump's recently unveiled national security strategy (NSS) is perhaps the most important American policy document of the year. It lays out what Trump's 'America First' principle means in terms of Washington's foreign policy and delineates friends, foes and frenemies. The overarching thought behind the document is a refusal to accept that American power is diminishing in the international arena. It identifies Russia and China as countries that challenge American influence, values and wealth, perceives Iran and North Korea as rogue nations, and squarely acknowledges the threat posed by transnational terror groups and crime syndicates.

The document has several positives for New Delhi. India has been recognised as a leading global power, with Trump administration stating it will deepen its strategic partnership and support India's leadership role in maintaining security in the Indo-Pacific. This is particularly important in the context of Chinese muscle flexing in Asia which has led to confrontations with other Asian nations, including India – witness the 73-day Doklam standoff between New Delhi and Beijing accompanied by extraordinary Chinese belligerence. The document's observation that China built its power through compromise of sovereignty of other nations clearly calls out Beijing's aggressive tactics in the region.

As things stand, China leaves no stone unturned in taking advantage of the strategic 'opportunities' of expanding its power and pressuring neighbours. Given this scenario, it's good to have the US in India's corner as a counterbalance. Meanwhile, the US has been forthright about Pakistan's role in fomenting terrorism, calling upon Islamabad to desist from destabilising Afghanistan and end support to terror groups. Unlike previous US administrations, Washington's new strategy ends the practice of hyphenating India and Pakistan.

The problematic area in the new security strategy, though, is the tough line taken on Russia and Iran – both countries that India would like to work with. Russia, in particular, is a major strategic ally. Trump is known to be unpredictable, and may not follow through on all elements of the current NSS. That would be bad if Washington drops the ball on pressuring Pakistan for nursing terror militias. But it would be good if it enables cooperation between Washington and Moscow. Unfortunately, with special counsel Robert Mueller investigating Russian interference in US elections and possible collusion with the Trump campaign, the latter is a distant prospect.

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 21-12-17

टूटी हुई गारंटी

संपादकीय

इंस्टीट्यूट ऑफ इकनॉमिक ग्रोथ (आईईजी) के एक हालिया सर्वे से पता चलता है कि नौकरी की तलाश में गांवों से शहरों का रुख करने की प्रवृत्ति में कोई कमी नहीं आई है। यह महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी (मनरेगा) योजना की नाकामी की ओर भी इशारा करता है जिसके दो प्रमुख लक्ष्यों में से एक शहरों की ओर पलायन रोकना भी था। यह इस बात का भी संकेत है कि आजीविका की सुरक्षा देने वाली योजना के तौर पर भी इसे आंशिक सफलता ही मिल पाई है। लेकिन राहत की बात है कि इस योजना पर किया जा रहा भारी-भरकम खर्च पूरी तरह व्यर्थ नहीं जा रहा है। पिछले कुछ वर्षों में इस योजना के तहत मृदा एवं जल संरक्षण की दिशा में किए गए प्रयासों के कुछ सकारात्मक नतीजे आने शुरू हो गए हैं। आईईजी के सर्वे के मुताबिक जल संरक्षण की मुहिम वाले इलाकों में अनाज उत्पादन में 11.5 फीसदी और सब्जी उत्पादन में 32 फीसदी की तेजी आने का अनुमान है। इससे भी अहम बात यह है कि इन इलाकों में ग्रामीण आय 11 फीसदी तक बढ़ गई है। इसके बावजूद सर्वे में शामिल 80 फीसदी जिलों के ग्रामीण इलाकों से होने होने वाला पलायन बदस्तूर जारी है जबकि बाकी जिलों में इसमें मामूली गिरावट ही आई है।

साफ है कि मनरेगा से लाभान्वित होने वाले लोगों की नजर में ये लाभ उन्हें कमाई के बेहतर मौके तलाशने से रोकने को नाकाफी हैं। ग्रामीण इलाकों में मिलने वाली कम मजदूरी और रोजगार गारंटी वाले दिनों का अपर्याप्त होना इसके प्रमुख कारण हो सकते हैं। सर्वे के मुताबिक कई इलाकों में मनरेगा कामगारों को मिलने वाली औसत मजदूरी बाजार दर से कम होती है। कुछ मामलों में तो यह न्यूनतम मजदूरी दर से भी कम पाई गई है। इसके अलावा रोजगार गारंटी योजना के संचालन में कई अन्य अनियमितताएं अब भी बनी हुई हैं, हालांकि पहले की तुलना में खासा सुधार हुआ है। एक बड़ी खामी यह है कि काम के 15 दिनों के भीतर भुगतान करने की समयसीमा का पालन नहीं किया जा रहा है। मनरेगा के बजट आवंटन में हरेक साल खासी बढ़ोतरी करने के बावजूद ऐसा हो रहा है। मौजूदा वित्त वर्ष में तो मनरेगा के लिए 48,000 करोड़ रुपये का रिकॉर्ड आवंटन किया गया है। अधिक देरी रोजगार सृजन के लिए कराए गए कार्यों में लगी सामग्री के भुगतान में हो रही है। इसका भुगतान केंद्र और राज्य सरकारों को 75:25 अनुपात में करना होता है। लेकिन अक्सर राज्य सरकारें समय पर फंड जारी करने से चूक जाती हैं।

अपने क्रियान्वयन के 12 वर्षों के अधिकांश समय मनरेगा में भ्रष्टाचार, घोटाला होने और इसके लिए आवंटित संसाधनों को किसी अन्य मद में भेज देने की समस्याएं रही हैं। फर्जी जॉब कार्ड और जॉब शीट में फर्जी आंकड़े भरने के लिए वाकये सामने आते रहे हैं। कई बार तो लोगों के पास एक से अधिक कार्ड देखे गए हैं। इस कार्यक्रम की गड़बडिय़ों को दुरुस्त करने के लिए ग्रामीण विकास मंत्रालय की तरफ से चलाए गए एक अभियान में 93 लाख से अधिक जॉब कार्ड निरस्त कर दिए गए जिसके बाद लाभार्थियों की संख्या घटकर 3.1 करोड़ पर आ गई है। मंत्रालय अब लाभार्थियों का इलेक्ट्रॉनिक मस्टर रोल बनाने जा रहा है और आधार क्रमांक पर आधारित भुगतान व्यवस्था भी लागू करने की तैयारी

है। मनरेगा के फंड में होने वाली धांधली रोकने और बेहतर क्रियान्वयन सुनिश्चित करने के लिए ऐसे कदम उठाए जाने जरूरी हैं। लाभार्थियों का चयन और किए जाने वाले कार्यों के बारे में सुझाव देने वाली पंचायतों को इस काम में अधिक पारदर्शिता रखने की जरूरत है। यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि मनरेगा मुश्किल दौर से गुजर रहे कामगारों के लिए एक सुरक्षा घेरा बना रहे और रोजगार के मामले में सामान्य कृषि कार्य से प्रतिस्पद्र्धा न करे। ऐसा नहीं होने पर मनरेगा कार्यक्रम पहले से ही श्रमिकों की कमी से जूझ रहे कृषि क्षेत्र की हालत और खराब कर देगा।

दैनिक भास्कर

Date: 21-12-17

जटिल होते जा रहे समाज में पर्यावरण की विकट चुनौती

संपादकीय

राष्ट्रीय हरित पंचाट के निवर्तमान अध्यक्ष न्यायमूर्ति स्वतंत्र कुमार ने पर्यावरण के जटिल होते मुद्दों की तरफ इशारा करते हुए समाज को सोचने पर मजबूर कर दिया है। उनका यह कहना कि पहले यह मुद्दे इतने जटिल नहीं थे, समाज में बढ़ती जटिलताओं और उसके समक्ष दरपेश खतरों के बारे में एक चेतावनी है। अपने दस साल के कार्यकाल में उन्होंने पुरानी गाड़ियों पर पाबंदी, गंगा यमुना के जीर्णोद्धार, पंजाब, दिल्ली और हरिद्वार में प्लास्टिक पर पाबंदी, श्री श्री रविशंकर की संस्था पर जुर्माना, वैष्णोदेवी में यात्रियों की संख्या सीमित करना और अमरनाथ में कुछ पाबंदियां लगाने जैसे कई महत्वपूर्ण फैसले दिए और उनके लागू होने और उपेक्षित होने के खट्टे-मीठे अनुभवों से गुजरने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे। उनके इस कथन का पहला तात्पर्य नकारात्मक है और मानता है कि विकसित और जटिल होता समाज पर्यावरण को अधिक क्षति पहुंचा रहा है। उनका दूसरा अर्थ सकारात्मक है और कहता है कि पहले सरकारी संस्थाएं इतनी तेजी से कार्रवाई नहीं करती थीं, जितनी आज करती हैं। इस जटिलता के पीछे वह विकास है, जिसके तहत औद्योगिक गतिविधियों और शहरीकरण में निरंतर वृद्धि हो रही है। विडंबना देखिए कि मनुष्य ही प्रकृति का अधिकतम विनाश कर रहा है और वही उसे बचाने के लिए सर्वाधिक प्रयास भी कर रहा है। सरकार और समाज के सामने उलझन यही है कि उसे बिजली भी चाहिए और नदी और पहाड़ भी, उसे वन, धरती और जीव जंतु भी चाहिए और कटान तथा खदान भी, यह जानते हुए कि वे एक-दूसरे के विरोधी हैं। राष्ट्रीय हरित पंचाट प्रकृति और विकास के इसी द्वंद्व के बीच समन्वय बैठाने का प्रयास कर रहा है। पिछले 25 वर्षों के उदारीकरण ने मानव की विकास की इच्छा को और तीव्र किया है और पर्यावरणीय चेतना को भी प्रखर किया है। पहले जिस तरह से पर्यावरण के सवाल को फैशन और अकादमिक सवाल समझा जाता था अब वह स्थित बदल गई है। पहले रोजी-रोटी बनाम पर्यावरण की बहस चलती थी। आज रोजी-रोटी और पर्यावरण एक तरफ आ गए हैं और दूसरी तरफ

सिर्फ विनाश ही है। इसलिए राष्ट्रीय हरित पंचाट जैसी संस्था को समर्थ बनाना, उसमें जजों और कर्मचारियों की पर्याप्त संख्या का होना तो जरूरी है ही, उत्पादन के उन साधनों पर भी विचार करना आवश्यक है जिनसे पर्यावरण खतरे में पड़ता है।

नईदुनिया

Date: 21-12-17

दूरगामी महत्व का निर्णय

संपादकीय

गुरुग्राम के रेयान इंटरनेशनल स्कूल के छात्र प्रद्युम्न ठाकुर की हत्या के मामले में किशोरवय अभियुक्त के खिलाफ जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड का निर्णय दूरगामी महत्व का है। यह बाल न्याय (बच्चों की देखभाल एवं संरक्षण) अधिनियम में 2015 में हुए संशोधन की भावना के अनुरूप है। पांच साल पहले दिल्ली में हुए निर्भया कांड के बाद देशभर में इस मांग ने जोर पकड़ा था कि गंभीर अपराधों में क्रूरता दिखाने वाले किशोरवय अपराधियों को उनकी कम उम्र का फायदा नहीं मिलना चाहिए। स्मरणीय है कि निर्भया के साथ बलात्कार और उसकी हत्या करने वाले मुजरिमों में एक 18 साल से कम आयु का था। पुलिस की छानबीन से यह सामने आया कि उसने ही निर्भया से सबसे ज्यादा बर्बरता बरती थी। लेकिन वह कम सजा पाकर बच निकला, क्योंकि उस समय पुराना कानून लागू था।

लेकिन रेयान इंटरनेशनल स्कूल कांड का 16 वर्षीय अभियुक्त यह रियायत नहीं पा सकेगा। बीते सितंबर में इस घटना ने सारे देश को झकझोर दिया था। स्कूल के शौचालय में सात वर्षीय छात्र प्रद्युम्न की निर्ममता से हत्या कर दी गई। आरंभ में पुलिस ने इस मामले में एक बस ड्राइवर को आरोपी बनाया। लेकिन सीबीआई अपनी जांच से इस निष्कर्ष पर पहुंची कि असली हत्यारा उसी स्कूल का एक छात्र था। चूंकि उसकी उम्र 18 साल से कम है, इसलिए मामला जुवेनाइल जस्टिस बोर्ड में गया। अब बोर्ड ने यह फैसला दिया है कि अभियुक्त ने जघन्य अपराध किया। जिन परिस्थितियों में यह किया गया, उससे साफ जाहिर है कि आरोपी इतना परिपक्व था कि अपने कृत्य के परिणामों को समझ पाता और दंड से बचने के उपाय सोच पाता। कोई आरोपी जब इस अवस्था में हो, तो उचित ही है कि उस पर मुकदमा उसी तरह चले, जैसा वयस्कों पर चलता है। तो अब इस आरोपी पर भी आम सेशन कोर्ट में मामला चलेगा। हालांकि संशोधित कानून की एक धारा के तहत सेशन कोर्ट पहले इस सवाल पर विचार करेगा कि ये अभियुक्त वहां सुनवाई के योग्य है या नहीं।

बहरहाल, ये साफ है कि इस निर्णय से अब एक नई शुरुआत हुई है। पहले 18 साल से कम उम्र के आरोपियों के मामलों में उन पर उनके जुर्म के मुताबिक केस चलाने पर सोचा ही नहीं जाता था। जबकि आम तजुर्बा है कि अब वयस्कता जल्दी आने लगी है। ऐसा मीडिया के असर और बदलते सामाजिक माहौल के कारण हुआ है। हाल ही में दिल्ली के एक प्राइवेट स्कूल में एक ऐसा खौफनाक मामला सामने आया था, जहां पर चार साल की एक बच्ची के साथ उसी की क्लास में पढ़ने वाले एक बच्चे ने यौन दुराचार की कोशिश की। यह उल्लेख ये दलील देने के लिए नहीं किया जा रहा है कि इतनी छोटी उम्र के आरोपी पर भी बालिगों की तरह मुकदमा चलना चाहिए। किंतु जब समाज में नई प्रवृत्तियां उभर रही हों, तो उन्हें नजरअंदाज भी नहीं किया जा सकता। फिर घटनाओं पर पीड़ित परिवार के नजरिए से भी सोचा जाए। कह

सकते हैं कि जुवेनाइल जस्टिस एक्ट में बदलाव से उपरोक्त तकाजों की पूर्ति हुई है। ताजा मामला प्रमाण है कि उस परिवर्तन के परिणाम सामने आने लगे हैं।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 20-12-17

सतर्क रहे भारत

डॉ. सतीश कुमार

कम्युनिस्ट दल के नेता के. पी. ओली नेपाल के नये प्रधानमंत्री होंगे। वामपंथी गठबंधन की ऐतिहासिक जीत ने पूर्व प्रधानमंत्री ओली के नेतृत्व में इस महीने के अंत तक वामपंथी सरकार बनने की राह खोल दी है। प्रचंड की दखलंदाजी भी ज्यादा नहीं होगी। दोनों के दलों के आकड़ों में बहुत का अंतर है। प्रचंड न ही तख्ता पलट की कोशिश कर पाएंगे जैसा कि पिछली बार उनने किया था। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि अक्टूबर में वामपंथियों का गठबंधन चीन के इशारे पर हुआ है। इस बात की पुष्टि संयुक्त राष्ट्र द्वारा भी की गई। इसलिए ओली प्रधानमंत्री बनने के उपरांत चीन को कर्ज अदायगी करने की कोशिश करेंगे। जो संधि चीनी कंपनियों से छीन ली गई थी, ओली पुन: उसको बहाल करेंगे। साथ ही, चीन नेपाल को भारत से दूर खींचने की पहल करेगा। देखना है कि क्या ओली भारत विरोधी तेवर के साथ नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था को चलाने में सफल हो पाते हैं? भारत विरोध को हवा देकर चीन नेपाल की हर जरूरतों को पूरा कर पाता है?

नेपाल की राजनीतिक उठापटक की वजह से संवैधानिक समस्या खड़ी हो गई थी। 2006 के बाद से निरंतर नेपाल गर्त की ओर अग्रसर था। पहले से वामपंथियों के खूनी इरादों से लाखों की जान जा चुकी थी। राजशाही से लोकतांत्रिक परिवर्तन अत्यंत ही दुखदायीपूर्ण था। 2008 में पहली संविधान सभा चुनी गई। इसका कार्यकाल दो साल के लिए था। राजनीतिक असहमति के कारण बार-बार कार्यकाल बढ़ाने के बावजूद नया संविधान देने में संविधान सभा नाकाम रही। अंतत: नेपाल के सर्वोच्च न्यायालय ने साल 2012 में निर्णायक दखल दिया। इसी वजह से 2013 में नई संविधान सभा चुनी गई। दूसरी संविधान सभा ने दो साल के भीतर 2015 में ही नया संविधान बना कर देश को सौंप दिया। संशोधनों की यह मांग उन तमाम नस्लीय एवं भाषायी समूहों द्वारा की जा सकती है, जो साल 2015 में अंगीकृत नये संविधान के विरुद्ध आंदोलन करते रहे हैं। नेपाल का चुनाव कई कारणों से महत्त्वपूर्ण हैं। यह महत्त्व नेपाल के राजनीतिक कारणों तक सीमित नहीं है, बल्कि इसका बाहरी महत्त्व भी है। भारत और चीन के बीच प्रतिस्पर्धा और रस्साकस्सी के रूप में। नेपाल का बफर स्टेट होना उसके सामरिक महत्त्व को बहुमूल्य बना देता है। नेपाल की राजनीतिक व्यवस्था को समझना इसलिए आसान नहीं है कि बाहरी शक्तियां व्यवस्था पर हावी हैं।2015 के संविधान के बाद जो बवाल हुआ, वह निवर्तमान प्रधानमंत्री ओली के कारण हुआ था।

नेपाली संविधान की सारी विसंगतियों के लिए भारत को दोषी माना गया। 2015 के उपरांत नेपाल की राजनीति में कई हिचकोले आए। प्रचंड ने प्रधानमंत्री की कुर्सी हथियाने के लिए नेपाल कांग्रेस पार्टी से हाथ मिला लिया। संयुक्त सरकार

भी बनी 6 महीने के लिए। लेकिन इसी बीच में दहल की सीपीएन (माओवादी सेंटर) और ओली की सीपीएन-यूएमएल के बीच गठबंधन हो गया। दूसरी तरफ लोकतांत्रिक गठबंधन के अंतर्गत नेपाल कांग्रेस पार्टी और प्रजातंत्र पार्टी की बीच समझौता हुआ है। मधेसी पार्टियां भी कांग्रेस को मदद करेंगी। अर्थात संघर्ष दो दलों के गठबंधन की बीच है। लेकिन इस बात की ज्यादा उम्मीद है कि सरकार साम्यवादी गठबंधन की बनेगी, जिसके प्रधानमंत्री प्रत्याशी पूर्व प्रधानमंत्री ओली हैं, जिनकी राजनीति का मुख्य आधार भारत विरोध की राजनीति है। जिस तरीके से साम्यवादी दलों के बीच गुपचुप समझौता हुआ है, वह महज प्रचंड और ओली की स्वाभाविक मित्रता नहीं है, बल्कि मित्रता बलपूर्वक बनाई गई है। यह सब कुछ चीन के इशारों पर किया गया है।

ओली ने नेपाल के पहाड़ी इलाकों में उग्र राष्ट्रवाद की नींव रखने की कोशिश की है जो भारत विरोध पर टिकी है। ओली के प्रधानमंत्री बनने से भारत और नेपाल के संबंध में तीखापन आएगा, इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता। लेकिन नेपाल का प्रधानमंत्री बनने वाला हर व्यक्ति भली भांति समझ चुका है कि भारत के समर्थन के बिना गद्दी पर बैठना मुमकिन नहीं है। प्रचंड को भी यह बात 2008 में समझ नहीं आई थी लेकिन 2015 में बखूबी समझ गए थे। दूसरी समस्या यह है कि साम्यवादियों के बीच सत्ता की लड़ाई से इनकार नहीं किया जा सकता। प्रचंड पुन: पाला बदल सकते हैं, अगर नेपाली कांग्रेस और मधेसी पार्टी चुनाव के दूसरे चरण में बहुत बेहतर प्रदर्शन करते हैं। भारत के लिए नेपाल का चुनाव कई मायनों में महत्त्वपूर्ण है। चीन की हस्तक्षेपवादी और उग्र नीति भारत के लिए मुश्किलें पैदा कर सकती है, इसके लिए जरूरी है कि नेपाल में मजबूत सरकार हो चाहे कोई भी दल या व्यक्ति प्रधानमंत्री हो।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 20-12-17

नया रिश्ता

संपादकीय

कहा जाता है कि राजनय में जब दो देश एक-दूसरे के लिए उपयोगी साबित होते हैं, तो दोस्ती की शुरुआत होती है। तब किसी देश की खूबियां देखी जाने लगती हैं और उसका महत्व समझ में आने लगता है। भारत और अमेरिका के बीच दोस्ती का यह रिश्ता इन दिनों काफी तेजी से पनप रहा है। मंगलवार को अमेरिकी सरकार द्वारा जारी नेशनल सिक्योरिटी स्ट्रेटजी इसी रिश्ते के आगे बढ़ने का दस्तावेज है। यह पहली बार हुआ है कि अमेरिकी सरकार के किसी महत्वपूर्ण नीतिगत दस्तावेज में भारत को एक ग्लोबल पावर यानी विश्व शक्ति के रूप में पहचाना गया है। अभी तक भारत का उल्लेख दक्षिण-पूर्व एशिया की क्षेत्रीय ताकत और कभी-कभी तो उभरती हुई क्षेत्रीय ताकत के रूप में होता था। और भारत के बारे में अक्सर जो कहा जाता था, उसका अर्थ होता था कि भारत अभी बदलाव की प्रक्रिया में है, पर यह ऐसा नहीं है, जिसका पूरी तरह उपयोग हो सके। लेकिन पहली बार कहा गया है कि भारत लगभग पूरी तरह बदल गया है। इसकी एक व्याख्या यह भी हो सकती है कि भारत इस समय ऐसी स्थिति में आ गया है कि अमेरिका उसका इस्तेमाल कर सके। लेकिन अगर हम दस्तावेज के विस्तार में जाएं, तो इसके कई दूसरे और ज्यादा महत्वपूर्ण अर्थ खुलते हैं।

यह दस्तावेज काफी समय से कही जा रही इस बात पर भी मुहर लगाता है कि नए विश्व समीकरण में भारत और अमेरिका ऐसी जगह पर खड़े हैं, जहां दोनों के हित एक-दूसरे से मिलते हैं। यानी इसका एक अर्थ यह भी हुआ कि अगर अमेरिका भारत का इस्तेमाल कर सकता है, तो कई मोर्चे ऐसे भी हैं, जिन पर वह भारत के लिए उपयोगी साबित होने वाला है। अब पाकिस्तान को ही लें, काफी लंबे समय बाद लगने लगा है कि अपने नजरिये के मामले में अमेरिका भी वहीं आकर खड़ा हो गया है, जहां भारत काफी समय से खड़ा है। यह दस्तावेज पाकिस्तान से खुलकर कहता है कि वह अपने यहां से सभी तरह के आतंकवादियों को खत्म करे। जबकि अभी तक यह दबे-छिपे स्वीकार किया जाता था कि पाकिस्तान में आतंकवादियों को पाला-पोसा जाता है, लेकिन वहां रणनीति यह मानकर बनाई जाती थी कि पाकिस्तान शांति-प्रक्रिया में एक केंद्रीय भूमिका निभाएगा। इसके अलावा, अफगानिस्तान में भूमिका के लिए भी पाकिस्तान को लताड़ा गया है। भारत के लिए यह भी काफी महत्वपूर्ण है। भारत के लिए एक और महत्व का मुद्दा इस दस्तावेज में है, और वह है चीन का आक्रामक विस्तारवाद। चीन को लेकर भारत और अमेरिका की चिंताएं लगभग एक सी हैं। इसीलिए इसमें भारत, जापान और ऑस्ट्रेलिया के साथ सामरिक समीकरण बनाने की भी बात की गई है।

हालांकि हमें इस सच को भी स्वीकार कर लेना चाहिए कि भारत और अमेरिका इस समय इतिहास के ऐसे मोड़ पर खड़े हैं, जहां दोनों के हित और दोनों का नजरिया आपस में काफी कुछ मिलता है। दोनों की विश्व दृष्टि इस समय तकरीबन एक सी ही है। कुछ साल पहले तक स्थिति इसके विपरीत सी ही थी और चीजें आगे भी बदल सकती हैं। अमेरिका तो इस क्षण के लिए भारत के अधिकतम उपयोग की रणनीति बना ही रहा है, भारत भी उसके अधिकतम उपयोग के रास्ते तलाशे। इसका अर्थ यह नहीं है कि भारत अमेरिकी हथियारों का सबसे बड़ा खरीदार बन जाए, बल्कि इसका फायदा तभी होगा, जब हम इस मौके का इस्तेमाल आर्थिक और सामरिक रूप से एक बड़ी ताकत बनकर अपने पांवों पर खड़े होने के लिए करें। दुनिया की राजनीति में सामरिक दोस्ती बड़ी भूमिका निभाती है, लेकिन यह स्वावलंबन का विकल्प नहीं हो सकती।

Date: 20-12-17

लमहों का गुस्सा, सदियों का विमर्श

विभूति नारायण राय, पूर्व आईपीएस अधिकारी

आज से पांच साल पहले पूरे देश की आत्मा को झकझोरने वाले निर्भया कांड ने एक ऐसे विमर्श को जन्म दिया है, जिसके कई पहलुओं पर अभी तक पूरी बहस होनी बाकी है। सारे देश का गुस्सा 23 वर्षीया निर्भया के साथ हुई दरिंदगी पर फूट पड़ा और दिल्ली के अलावा छोटे-बड़े तमाम शहरों-कस्बों में लोग सड़कों पर निकल आए। यह स्वाभाविक भी था कि यदि सुरक्षा के सारे ताम-झाम के बावजूद राजधानी में महिलाएं सुरक्षित नहीं हैं, तो शेष देश में उनकी स्थिति कैसी होगी? पूरा विमर्श स्त्री पक्ष को केंद्र में रखकर हुआ था और इसके कई दूरगामी परिणाम भी निकले। इस एक मामले ने यौन उत्पीड़ित स्त्री की झिझक, शर्मिंदगी और भय पर सबसे निर्णायक प्रहार किया और पहली बार अधिकाधिक परिवारों ने पीड़िता को ही दोषी ठहराने की जगह उसके साथ खड़ा होना शुरू किया है। अब ज्यादा महिलाएं अपने साथ हुई ज्यादतियों के खिलाफ खुलकर बोल रही हैं, पुलिस और मीडिया इन मुद्दों पर अधिक संवेदनशील हुए हैं तथा समुदाय की

सहानुभूति पीड़िता के साथ पहले के मुकाबले बढ़ी है। निर्भया की वजह से कानूनों में परिवर्तन हुए और कामकाजी महिलाओं के लिए कार्य-स्थल अधिक सुरक्षित बने हैं। यह स्वातंत्र्योत्तर भारत के बड़े मूल्यगत परिवर्तनों में से एक है, पर मुझे लगता है कि निर्भया विमर्श के शोर-शराबे में दो महत्वपूर्ण बिंदु हमारी नजरों से ओझल हो गए।

सभ्य बनने की प्रक्रिया में मनुष्य ने मानवाधिकारों के कई सोपान चढ़ते हुए अपराधियों को दंड देने के तौर-तरीकों में भी क्रमश: बड़े बदलाव किए हैं। अमेरिका, चीन और इस्लामी देशों के कुछ अपवादों को छोड़कर विश्व के अधिकांश देशों ने अपराधियों को कोड़े लगाने या अंग भंग जैसी सजाएं खत्म कर दी हैं और लगभग आधी दुनिया ने मृत्युदंड समाप्त कर दिया है। भारत में कानून की किताबों में अभी भी फांसी मौजूद है और हर साल देश भर में अदालतें सौ से अधिक व्यक्तियों को मृत्युदंड सुनाती हैं। नेशनल क्राइम रिकॉर्ड ब्यूरो के आंकड़ों के अनुसार, 1998 से 2013 के बीच 2,000 से ज्यादा अपराधियों को फांसी की सजा सुनाई गई थी, यह अलग बात है कि इन वर्षों में सचमुच सिर्फ तीन ही फंदे से लटकाए गए। इनमें से कुछ तो अभी भी काल कोठरियों में बंद अपनी अपीलों के निस्तारण का इंतजार कर रहे हैं, लेकिन अधिकतर की सजाएं उच्च न्यायालयों, सर्वोच्च न्यायालय या राष्ट्रपति के स्तर से संशोधित हो चुकी हैं। यह एक आम भारतीय अनुभव है कि किसी जघन्य अपराध के फौरन बाद एक गुस्से की लहर आती है और सड़कों पर लोग मांग करते हैं कि अपराधियों को सरे राह फंदे से लटका दिया जाए। प्रकरण के मीडिया ट्रायल में भी यही मांग की जाती है और निचली अदालतें भी जन-भावनाओं से प्रभावित हुए बिना नहीं रह पातीं। कुछ वर्षों के अंतराल के बाद जब गुस्सा ठंडा पड़ चुका होता है, तब यही प्रक्रिया भिन्न हो जाती है। सबसे दिलचस्प तो वे मामले होते हैं, जहां अदालती उलझावों में ही लंबा समय बीत जाता है और कोई अपीली अदालत ही यह कहकर सजा कम कर देती है कि वर्षों से मृत्यु की प्रतीक्षा करने वाले दोषी को फांसी चढ़ाना क्रूरता होगी। कुल मिलाकर, कह सकते हैं कि भारतीय मानस राज्य द्वारा मृत्यु दिए जाने का ठंडे विवेक से समर्थन नहीं करता। पिछले कुछ वर्षों से मानवाधिकार एक्टिविस्ट, न्यायविद और राजनीतिक समुदाय दंड के इस बर्बर तरीके को समाप्त करने की मांग करते रहे हैं, पर निर्भया कांड ने समय के चक्र को उल्टा घुमा दिया। हत्या और बलात्कार के बाद हर मामले में फांसी देने की आवाजें उठने लगी हैं।

निर्भया विमर्श का दूसरा दुर्भाग्यपूर्ण पक्ष किशोरों से जुड़ा है। इस मामले के छह अभियुक्तों में से एक किशोर था और केवल वही मृत्युदंड से बच सका, पर उसके बहाने देश में किशोरों को भी फांसी देने के पक्ष में जबर्दस्त बहस हुई। कोई शक नहीं कि जिस नृशंसता से निर्भया की हत्या हुई थी, उससे पूरा देश दहल गया था, पर उसके एवज में जिस तरह से मारो-काटो का शोर मचा, उससे लगा कि अभी हम पूरी तरह से प्रौढ़ लोकतंत्र नहीं बने हैं। राम मनोहर लोहिया ऐसी ही स्थिति के लिए क्रूर कायरता शब्द का इस्तेमाल करते थे। इलेक्ट्रॉनिक चैनलों पर पीड़िता के मां-बाप की किशोर को फांसी पर लटकाने की भावुक अपील तो समझ में आ सकती है, पर शेष पैनलिस्ट का इसी में सुर मिलाकर किशोरों के लिए बने कानूनों को बदलने की बात बेचैनी पैदा करती है।छोटे होते परिवार, कामकाजी मां-बाप के पास समय की कमी, कंक्रीट के जंगलों में खेल के मैदानों का अभाव, सफलता की अंधी दौड़ और उसके दबाव, अराजक इंटरनेट, बहुत सारी भूल-भुलैया हैं, जिनमें आज का किशोर भटक रहा है। नोएडा में पिछले दिनों एक किशोर द्वारा अपनी बहन और मां की नृशंस तरीके से हत्या और फिर निरुद्देश्य बनारस में भटकने की घटना ने लोगों के रोंगटे खड़े कर दिए, पर यह तो सिर्फ रोग का लक्षण है। इस किशोर को वयस्क मानकर कठोरतम दंड देने की मांग की बजाय हमें उसके मन में झांकने का समय निकालना होगा। परिवारों, स्कूलों या पार्कों में उन्हें सहानुभूति और समझदारी से लबरेज स्पेस की जरूरत है। इस घटना के फौरन बाद राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र के नरक बन चुके बाल गृहों की खबरें देखने को मिलीं। इनमें कुछ समय बिताने के बाद किशोर के पक्के अपराधी बनकर निकलने की पूरी गारंटी समाज देता है। लगभग हमारी जेलों जैसी स्थिति है, जहां का भ्रष्ट और क्रूर निजाम बंदियों को सुधारने के स्थान पर ज्यादा बड़ा अपराधी बनाकर निकालता है।

किशोर न्याय के सिद्धांत पिछले कई सौ वर्षों तक चले विमर्शों का नतीजा हैं और इनमें मानव चेतना की यह समझ झलकती है कि अपने कृत्य के दुष्परिणामों को समझने में असमर्थ किशोर को कठोर दंड के स्थान पर सहानुभूति पूर्वक सुधारने की कोशिश की जानी चाहिए। इसी समझ के अंतर्गत आम अपराधियों की जेलों से अलग उनके लिए व्यवस्था की जाने लगी है। उनकी जेलों को सुधार गृह कहा जाता है। किशोरों के लिए अपराध शास्त्र की नई सैद्धांतिकी विकसित हुई है, जिसमें क्रूरता से अधिक सहानुभूति को स्थान मिला है। देर से ही सही, पर धीरे-धीरे भारतीय स्कूलों में बच्चों को शारीरिक दंड दिए जाने के खिलाफ सहमति बनती जा रही है। ऐसे में, फांसी या सख्त सजा के पक्ष में बहस समाज को क्रूर बनाने की प्रक्रिया का ही अंग होगी।